युवाओं की बेचैनी को मिले सही दिशा

राहुल वर्मा | फेलो, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च

स्वामी विवेकानंद चाहते थे कि पूरी दुनिया में मानवतावाद को बढ़ावा देने में भारतीय युवा बड़ी भूमिका निभाएं। हमारे युवाओं को उनके 'वसुधैव कुटुंबकम्' को अपनाना चाहिए।

आज स्वामी विवेकानंद की जयंती है। साल 1984 से ही इसे राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। युवाओं को यह दिन समर्पित करने के पीछे सोच यह थी कि नौजवान स्वामी विवेकानंद की बातें, उनकी जिज्ञासा, चिंतन, ऊर्जा आदि को प्रतिबिंबित करते हैं। विवेकानंद का देहांत महज 39 साल की उम्र में हो गया था और इतनी कम आयु में ही उन्होंने जिस तरह से जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी, वह उन्हें युवाओं का आदर्श बनाता है। यह समझा गया कि विवेकानंद के चिह्नों का अनुसरण करते हुए युवा कहीं अधिक संजीदगी से जीवन में आगे बढ़ सकते हैं, पर आज के भारतीय युवाओं में एक भटकाव दिखता है।

आज का भारत अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक युवा है। दुनिया की औसत आयु 31 साल है, जबकि हमारी 28 साल। यहां तक कि चीन (37 साल), अमेरिका (38 साल), इंग्लैंड (41 साल), जापान (47 साल), जर्मनी (47 साल) जैसे देश भी औसत उम्र में हमसे पीछे हैं। इसी कारण यह बार-बार कहा जाता है कि भारत को अपनी युवा जनसांख्यिकी का लाभांश आने वाले वर्षों में मिल सकता है, लेकिन असलियत में ऐसा होता नहीं दिख रहा। भारतीय युवाओं में आकांक्षाएं तो बहुत बढ़ी हैं, लेकिन उनकी बेचैनी और उत्तेजना को भी हमने अलग-अलग रूपों में महसूस किया है। साल 2016 के बाद देश के अनेक विश्वविद्यालयों (जेएनयू, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद विश्वविद्यालय) के छात्र अलग-अलग कारणों से सड़कों पर उतरे। दलित-हिंसा के सवाल पर ही नहीं, अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण, एनआरसी-सीएए विरोध, कृषि कानून, अग्निवीर जैसे मसलों पर भी नौजवानों ने आक्रामक प्रदर्शन किए। अभी राहुल गांधी की चल रही 'भारत जोड़ो यात्रा' में भी नौजवानों की अच्छी-खासी भीड़ देखी जा सकती है।

इस बदलते घटनाक्रम को कोविड के दुष्परिणाम या नई बनी राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था से जोड़कर देखा जा सकता है, पर इसका सबसे बड़ा कारण है वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुस्ती और पूरी दुनिया में बढ़ता राजनीतिक व सामाजिक ध्रुवीकरण। आज भले ही स्टार्टअप और यूनिकॉर्न की संख्या बढ़ रही है, लेकिन युवाओं का एक बड़ा वर्ग अपने आर्थिक भविष्य को लेकर संतुष्ट नहीं है। वह तमाम तरह की आशंकाओं से घिरा हुआ है। तेजी से बदलते राजनीतिक घटनाक्रम भी युवाओं में अकुलाहट बढ़ा रहे हैं।

यह बात सही है कि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय राजनीति में नौजवानों की सहभागिता बढ़ी है। पहले युवाओं का मतदान प्रतिशत तुलनात्मक रूप से कम रहता था, लेकिन पिछले दो आम चुनाव बताते हैं कि नौजवान अब मतदान-केंद्रों पर पहुंचने लगे हैं। पंचायत व शहरी निकाय चुनावों में तो इनकी भागीदारी काफी बढ़ी है और सियासी जंग के मैदान में कई युवा प्रत्याशी अपना भाग्य आजमाने लगे हैं। मगर राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी तस्वीरों का फिलहाल अभाव है। नौजवानों के लिए पंचायत से संसद तक का रास्ता अभी तैयार नहीं हुआ है। स्थिति यह है कि विधानसभा या लोकसभा में 40 साल से कम उम्र के विजेता प्रत्याशी बहुत कम नजर आते हैं। जो प्रत्याशी विधानसभा या लोकसभा की दहलीज तक पहुंचते भी हैं, तो उनके पास आमतौर पर एक राजनीतिक विरासत होती है। बिना ऐसी पृष्ठभूमि से चुनावी टिकट हासिल करना और जीतना काफी मुश्किल माना जाता है। एक युवा देश में युवाओं की सक्रियता इतनी कम हो, तो यह शोचनीय विषय है। इस कमी से हमें जल्द ही पार पाना होगा।

दिक्कत यह है कि पिछले कुछ दशकों में अपने यहां 'कैंपस पॉलिटिक्स' की धार कुंद हो गई है। अब विश्वविद्यालयों में ऐसी राजनीति नहीं होती कि उसमें देश व समाज के प्रति चिंतन दिखे। आक्रामकता और 'पावर पॉलिटिक्स' छात्र राजनीति की पहचान बन गई हैं। ज्यादा पीछे न भी जाएं, तो दो-तीन दशक पहले तक विश्वविद्यालयों में इस तरह की राजनीति होती थी, जिसमें देश-दुनिया को नई दिशा देने की झलक दिखती थी। हम चाहें, तो मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों पर इसका दोषारोपण कर सकते हैं, लेकिन सच यह है कि शिक्षा-व्यवस्था में एक खोखलापन आ गया है। अब विश्वविद्यालयों में छात्रों से संवाद नहीं होता और वहां व्यक्ति-निर्माण को तवज्जो नहीं दी जा रही है। इस संदर्भ में शिक्षा-व्यवस्था आज अपनी भूमिका निभा पाने में विफल दिख रही है।

इसका यह मतलब कतई नहीं कि राजनीतिक ह्रास में युवाओं का अपना दोष कम है। लोकनीति-सीएसडीएस के सर्वे बताते हैं कि युवा आज भी रूढ़ियों में अटके हुए हैं। उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। वे पितृसत्तात्मक समाज को ही पसंद करते हैं और महिलाओं को पूरी बराबरी नहीं देना चाहते। किस तरह से समान और समतामूलक समाज की स्थापना की जाए, इस सवाल पर भी उनका रवैया अनुदार है। वे आज भी जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव करते हैं। यह स्थिति तब है, जब उनसे उदार और आधुनिक होने की अपेक्षा कहीं अधिक की जाती है। लोकनीति-सीएसडीएस के सर्वेक्षण यह भी बताते हैं कि भारतीय युवा बेशक आधुनिक जीवनशैली पसंद करते हैं, लेकिन विचारों में अब भी संकीर्णता ओढ़े हुए हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बजाय वे मिथकों पर भरोसा करते हैं, जिसकी तस्दीक 'वाट्सएप यूनिवर्सिटी' पर बढ़ते विश्वास से भी होती है।

सवाल यह है कि इस सूरते-हाल में क्या किया जाए? आज भारत अपनी आजादी के 75 साल पूरे कर चुका है, और 100वें वर्ष की ओर बढ़ चला है। अगर हम 'नया भारत' का सपना साकार करना चाहते हैं और वैश्विक मंचों पर एक सुदृढ़ भारत देखना चाहते हैं, तो हमें स्वामी विवेकानंद के आदर्शों को आत्मसात करना होगा। 1893 में शिकागो की धर्म संसद में विवेकानंद ने धार्मिक सद्भाव की बात कही थी। जातीय-धार्मिक उन्माद और कट्टरता में फंसे आज के भारतीय नौजवानों को विवेकानंद का वह भाषण बार-बार सुनना चाहिए और उसे अपने जीवन में उतारना चाहिए। विवेकानंद इस बात के हिमायती थे कि पूरी दुनिया में मानवतावाद को बढ़ावा देने में भारतीय नौजवान बड़ी भूमिका निभाएं। वह आध्यात्मिक बातों में रुचि रखते थे, फिर भी राष्ट्रप्रेम की वकालत करते थे। आज के युवाओं को भी उसी *वसुधैव कुटुंबकम्* को अपनाना चाहिए, जिसका खाका विवेकानंद ने शिकागो में खींचा था।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)